विनीत बाजपेयी

मस्तान

दिल्ली का बाग़ी सरफ़रोश

TreeShade Books

आरंभ

4 मई, 1799 ईसवी

'उसका बदन अभी भी गर्म है|

वो... वो मृत्यु के सामने घुटने टेकने से इंकार कर रहा है... जॉन साहब!'

जैसे ही जॉन मैकगोवेन की कुदाली पक्के फर्श पर टकराई, मुन्तसिर बख्श यूं कांप उठा, मानो उस पर किसी आत्मा का साया हो| उसकी आंखें शैतान की तरह ऊपर चढ़ने लगीं, और उसका शरीर यूं थरथराने लगा मानो वो किसी आदिकालीन जिन्न के कब्जे में हो - जो उसे नरक की गहराइयों से खींच रहा हो|

विक्षिप्त-सा युवा ब्रिटिश अफसर इस सबसे जरा भी नहीं झिझका| अब उसे इसकी परवाह नहीं थी| इस भूतिया तहखाने में आज रात उसकी जान भी जा सकती थी, लेकिन उसे सिर्फ़ एक ही चीज की परवाह थी|

मेरी आत्मा इस महल पर हमेशा मंडराएगी| अगर आज मैं ये अभिशप्त ख़ज़ाना हासिल नहीं कर पाया, तो कोई भी इसे हासिल नहीं कर पायेगा!

उस अंग्रेज़ को नहीं पता था कि उसकी ये सोच कितनी बदकिस्मत होने वाली थी|

युद्ध में तबाह हुए उस बैराज में तोपें लगातार दहाड़ रही थीं, और उनसे निकले लोहे के गोले श्रीरंगपट्टनम, मैसूर के शेर के क़िले की अभेद्य दीवारों से टकरा रहे थे|

ऐसा निर्मम युद्ध धरती पर पहले कभी नहीं देखा गया था| क़िले की ऐसी घेराबंदी पहले कभी नहीं हुई थी|

'शेर-ए-मैसूर अब जीती-जागती लाश हैं... साहब,' बख्श ने दृढ़ता से कहा|

पसीने से तर जॉन मैकगोवेन अपने भोले साथी की बातों पर ध्यान दिए बिना ही, पागलों की तरह पक्की ज़मीन पर अपनी कुदाल से वार करता रहा| लेकिन मन ही मन वो इन शब्दों के भय से अछूता नहीं रह पाया था| बल्कि उस पर कुछ ज़्यादा ही असर हुआ था|

'उसे तलवार घोंपे हुए तीन घंटे से भी अधिक समय हो चुका है| और उस पर अनेक वार हुए थे| आपने तो उसकी कनपटी पर गोली भी चलाई थी| लेकिन अभी भी उसका बदन अंगारे की तरह दहक रहा है... वो... वो... वो भूत बन गया है, जॉन साहब...'

'ओह, अपनी बकवास बंद करोगे, बख्श? चुप रहो! चुप रहो! चुप रहो... !' मैकगोवेन अपनी उंगली दिल्ली के उस दाढ़ी वाले मुसलमान की तरफ उठाकर चिल्लाया|

उसका मुंह बंद करवाकर, मैकगोवेन वापस अपने काम में लग गया, वो ज़मीन के नीचे बने गुप्त ख़ज़ाने तक पहुंचने का रास्ता तलाश रहा था| वो उस ख़ज़ाने तक पहुंचना चाहता था, जिसे दुनिया की सबसे बहुमूल्य संपदा माना गया था|

शेर का ख़ज़ाना|

मैसूर का शेर|

टीपू सुलतान का ख़ज़ाना!

‘वो जानता है हम यहां हैं... चोरी-छिपे... चुराने... उस सम्पत्ति को जिसे उसने पूरी ज़िंदगी सहेजकर रखा था...’ मुन्तसिर बख्श ने फुसफुसाते हुए कहा, उसे अब उस पल पर पछतावा हो रहा था, जब उसने इस अभियान के लिए हां कहा था| कोई पागल आदमी ही शेर के ख़ज़ाने तक पहुंचने की हिम्मत कर सकता था|

जैसे ही पत्थर की परत हटी, ज़मीन में दरार दिखाई देने लगी| जॉन मैकगोवेन ने अपनी उत्साहित, डरी हुई आंख उठाकर उस रात के अपने इकलौते साथी को देखा| डर के बावजूद मुन्तसिर बख्श के दिल में स्वर्ण की हवस ने उफान मारा| ये वो हवस थी, जिससे शायद ही कोई इंसान बच पाता हो|

तुरंत ही अपने डर को भुलाकर, वो पागलों की तरह जॉन को देखकर हँसने लगा| और मुन्तसिर भी तुरंत उस आख़री बाधा को हटाने में शामिल हो गया, जो उनके और दुनिया के सबसे बड़े ख़ज़ाने के बीच आख़री काँटा थी|

आधे घंटे से भी कम समय में, दोनों आदमियों ने उस आख़री बाधा को भी पार कर लिया, और वो उन सीढ़ियों से नीचे उतर रहे थे, जो उन्हें उनकी मेहनत के फल तक ले जाने वाली थी| वो सीढ़ियां उन्हें ज़मीन के नीचे बने किसी अंधेरे तहखाने में ले जा रही थीं|

जब वो अपनी बदकिस्मत नियति तक पहुंचे, तो उन दोनों विक्षिप्त आदमियों को मशाल की झिलमिलाती रौशनी में जो नज़र आया, उसकी उन्होंने कल्पना तक नहीं की थी|

उनकी चुंधियाई आंखों के सामने दुनिया का सबसे बड़ा, अमूल्य, अकल्पनीय ख़ज़ाना फैला पड़ा था!

वो जोर-जोर से हँसने लगे|

हीरे, माणिक्य, स्वर्ण ईटें, सिक्के, आभूषण, स्वर्ण की बनी प्रतिमाएं, नीलम और अन्य बहुमूल्य रत्नों से भरी तिजोरियां, उनमें भरे रत्नों का आकार कबूतर के अंडों जितना था, स्वर्ण की बनी लताएं, हीरे जड़ित तलवारें... इन सबकी चकाचौंध में एक बार को तो उनकी सांस ही अटक गई... वो सब वहां बिना किसी सीमा के फैला हुआ था| लंदन का अंग्रेज़ और दिल्ली का हिंदुस्तानी इस अपार संपदा को देखकर पूरी तरह होश खो बैठे थे|

'तुमने देखा... देखा तुमने डरपोक... मैं तुम्हें इसके बारे में बता रहा था! इस पल से, तुम और मैं, इस दुनिया के सबसे धनी व्यक्ति हो जाएंगे!' जॉन अनियंत्रित उत्साह से चिल्लाया|

लेकिन वो युवा ब्रिटिश ये भूल गया था कि मैसूर का सम्राट, टीपू अभी तक मरा नहीं था| सुलतान के शरीर को कई घंटे पहले अंग्रेजी तलवारों ने क्षत-विक्षत कर दिया था| इतना होने के बाद, किसी सामान्य आदमी का शरीर तो कुछ ही मिनटों में ठंडा पड़ जाता| लेकिन सुलतान का नहीं| यहां तक कि चार घंटे बाद भी उसका शरीर अंगारे की तरह दहक रहा था|

वह उन्हें देख रहा था|

मरने के बाद भी|

टीपू की तड़पती हुई आत्मा अब नरबली चाहती थी!

मौत की उस गहरी ख़ामोशी के बीच कुछ आवाज़ आई| ऐसा लगा मानो दो भारी चट्टानें आपस में रगड़ रही थीं|

ख़ज़ाने के दोनों लोभियों ने एक-दूसरे को देखा, और फिर उस आवाज़ की ओर देखा|

अपने पागलपन और अपरिपक्व उत्सव में, जॉन और मुन्तसिर से एक बहुत जरूरी चीज अनदेखी रह गई थी| जिन सीढ़ियों के माध्यम से वो ख़ज़ाने तक पहुंचे थे, वो एक पत्थर के द्वार के पास ख़त्म हुई थी| लगभग दस फीट ऊंचे और चार फीट चौड़े इस द्वार पर सरकने वाला दरवाजा लगा था| किसी अनजान व्यक्ति के आने पर, ज़मीन के पत्थर उस दरवाजे को सतर्क कर देते थे|

अब वह विशाल दरवाजा तेजी से बंद हो रहा था| तुरंत ही दोनों को एहसास हो गया था कि उस विशाल चट्टान के दरवाजे ने, उस तहखाने को हमेशा के लिए बंद कर दिया था| झटके के साथ बंद होते दरवाजे से धूल उड़ी और एक और तेज रगड़ सुनाई दी| उस तहखाने में बिन बुलाये आने वाले दोनों आदमी पसीने से तर हो गए थे|

तहखाने में आने वाले घुसपैठियों के लिए, यह टीपू का आख़री जाल था|

अब वो समझ पाए थे कि टीपू की आत्मा अब तक उसके बदन को क्यों नहीं छोड़ रही थी|

मैसूर का शेर ख़ास मक्सद से रुका था| अपने प्रिय श्रीरंगपट्टनम क़िले के तहखाने में, वो उन दोनों आदमियों को जिंदा दफना देने वाला था|

वहां के यक्ष उस कीमती ख़ज़ाने की सुरक्षा कर रहे थे|

हमेशा के लिए|

पहला भाग

कौन जाए ‘ज़ौक़’

पर दिल्ली की गलियां

छोड़कर

- शेख इब्राहिम ‘ज़ौक़’

फाँसी-गर

दिल्ली-मथुरा राजमार्ग, दिसंबर 1856

घने जंगल में जाते हुए उनके दांत किटकिटा रहे थे, दूर तक फैली उस घनी वनस्पति को, गहरे कोहरे ने अपने आगोश में ले लिया था|

दिल्ली के बाहरी इलाके की कड़कड़ाती ठंड को, दिसंबर की इस बेमौसम बरसात ने और भी असहनीय बना दिया था| ठंड से ठिठुरते और बारिश के तेज वार से बचने की कोशिश के बीच, ईस्ट इंडिया कंपनी के सिपाही बड़ी मुश्किल से अपनी दूरबीन, राइफल और बंदूक़ पर पकड़ बना पा रहे थे| ठगों के उस बीहड़ इलाके में आगे बढ़ते हुए, उनके चेहरे डर से उतने ही सफ़ेद पड़ गए थे, जितने इस समय उनकी उंगलियों के पोर थे|

सूबेदार-मेजर छगन दूबे, हिंदुस्तानी सिपाहियों का नेतृत्व करते समय, अपनी सर्विस बंदूक़ पर पकड़ बनाए, बारिश की बूंदों के बीच, बड़ी मुश्किल से कुछ देख पा रहा था|

धबाआआम...!!

उस सर्द जंगल के, ख़ौफ़नाक सन्नाटे को चीरते हुए, उसकी शक्तिशाली बंदूक़ दहाड़ी|

धबाआआम…!!

अगले ही पल, उसने घनी झाड़ियों की तरफ फिर से गोली चलाई, और अपने साथियों को इतनी तेज आवाज़ में निर्देश दिया कि उसके गले की नसें भी फटती हुई महसूस हुईं|

‘फाँसी-गर…!’ वो उस दिशा में इशारा करते हुए चिल्लाया, जहां उसे दुश्मनों की हरकत दिखाई दी थी|

तुरंत ही, रेजिमेंट कमांडर, लेफ्टिनेंट रॉबर्ट डी’क्रूज़ ने अपनी नई कोल्ट रिवॉल्वर निकाली और उसकी सारी छह गोलियां, छगन की बताई दिशा में चला दीं| सूबेदार-मेजर छगन उसकी फ़ौज का दूसरा विश्वस्त योद्धा था, पहला योद्धा इस समय, वहां से कुछ दूरी पर, दूसरी लड़ाई लड़ने गया था|

सिपाहियों ने भी आदेश का पालन करते हुए, अपनी राइफल से सैकड़ों गोलियां उसी दिशा में चला दीं, और अपनी संगीन व तलवारें निकालकर बढ़ चले|

फाँसी-गर या खूंखार गिरोह की तलाश शुरू हो चुकी थी|

फाँसी-गर उत्तर भारत के वीभत्स और निर्दयी डाकुओं की टोली को कहा जाता था, जो पिछले सौ सालों से लोगों को लूट रहे थे!

14वीं सदी से वो लूटेरे निर्दोष व्यापारियों, यात्रियों और कारवां को लूटते रहे थे| वो राजमार्ग के सबसे भयानक लूटेरे थे| उनको फाँसी-गर इसलिए कहा जाता था, क्योंकि वो खाना खाते हुए लोगों को खींचकर ले जाते थे, और उन्हें रूमाल या फंदे के माध्यम से लटका देते थे| फाँसी लगा देते थे|

1830 के दशक में, ईस्ट इंडिया कंपनी के गवर्नर जनरल, लॉर्ड विलियन बेंटिंक ने इन लूटेरों का नामोनिशान मिटाने का फैसला लिया| उसने बड़ी संख्या में सिपाहियों को इन डकैतों का सफाया करने में लगाया| लेकिन ये काम आसान नहीं था| वो लूटेरे सिर्फ़ मासूमों को मारने वाला गैंग ही नहीं था| बल्कि वो एक सशक्त सैन्यबल था, जो शक्तिशाली ईस्ट इंडिया कंपनी से लोहा लेने को तैयार था|

ये एक औचक हमला था|

लेकिन वो नहीं जानते थे कि लूटेरों ने चारा डालकर, लेफ्टिनेंट डी'क्रूज़, सूबेदार-मेजर छगन दूबे और उनके सिपाहियों को, घने जंगल में बुलाकर, अपने जाल में फंसा लिया था|

ठग सब जगह घात लगाए बैठे थे| झाड़ियों के पीछे, घनी लताओं के पीछे, पेड़ की मचान पर| ज़हर-बुझे तीरों, बम और देसी बंदूकों ने कंपनी के सिपाहियों का स्वागत किया, और साफ़ हो गया था कि यहां बड़ा नरसंहार होने वाला था| मिनट भर के अंदर ही बीस हिंदुस्तानी सिपाही ढेर हो चुके थे|

इस अचानक हुए नृशंस हमले के बावजूद भी, डी'क्रूज़ रेजिमेंट के बहु-प्रशिक्षित सिपाहियों ने हिम्मत नहीं हारी, और वो तुरंत ही पेड़ों और झाड़ियों की आड़ में छिप गए| सिपाहियों ने सटीक निशानेबाज की तरह ठगों पर निशाना लगाया और कुछ को ढेर भी कर दिया|

बहादुर लेफ्टिनेंट डी'क्रूज़ ने अब तक अपनी रिवॉल्वर दोबारा लोड कर ली थी, हालांकि उस सारे कोहराम के बीच उसका घोड़ा बुरी तरह से हिनहिना रहा था| उसने अपने बाएं हाथ में बंदूक़ ली और दाहिने हाथ से तलवार निकाल ली| वो वीरता से दुश्मन की तरफ बढ़ा, निडरता से अपनी बंदूक़ और तलवार चलाता हुआ| छगन भी उस वीर ब्रिटिश अफसर के साथ-साथ आगे बढ़ा|

लेकिन अपनी वीरता और पराक्रम के बावजूद, आज डी'क्रूज़ रेजिमेंट उन ठगों के सामने संख्या में बहुत कम थी| ठगों की संख्या सैकड़ों में थी|

उस ख़ून-खराबे और भीषण युद्ध के बीच, कंपनी का हर सिपाही किसी चमत्कार की उम्मीद कर रहा था|

उनका अपना चमत्कार|